बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 3, Issue 3, July-September, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971

स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग : वैचारिक टकराव और विभाजन की नींव

डॉ. रोजी सिन्हा
असिस्टेंट प्रोफेसर
इतिहास विभाग, एस एन एस वाई डिग्री कॉलेज, रामबाग, पूर्णियाँ, बिहार
(पूर्णियाँ विश्वविद्यालय, पूर्णियाँ)

परिचय (Introduction)

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम एक ऐतिहासिक आंदोलन था, जिसमें विविध विचारधाराओं और संगठनों ने स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग इस संग्राम के दो प्रमुख स्तंभ थे, जिनके वैचारिक दृष्टिकोण और लक्ष्य न केवल स्वतंत्रता की राह को आकार देने में महत्वपूर्ण थे, बल्कि भारत के विभाजन की नींव भी रखते थे। यह लेख इन दोनों संगठनों के बीच वैचारिक टकराव का विश्लेषण करता है और यह समझने का प्रयास करता है कि कैसे उनके मतभेदों ने भारतीय उपमहाद्वीप के राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य को प्रभावित किया।

कांग्रेस, जिसकी स्थापना 1885 में हुई, ने एक समावेशी राष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपनाया, जिसमें सभी धर्मों, जातियों और समुदायों को एकजुट करके ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के खिलाफ लड़ने का लक्ष्य था। गांधीवादी सिद्धांतों के प्रभाव में यह संगठन एक जन–आंदोलन में बदल गया, जो धर्मनिरपेक्षता, स्वदेशी और सामाजिक सुधारों पर आधारित था। दूसरी ओर, 1906 में स्थापित मुस्लिम लीग ने शुरू में मुस्लिम हितों की रक्षा के लिए काम किया, लेकिन 1930 के दशक में मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में इसने दो–राष्ट्र सिद्धांत को अपनाया, जिसमें हिंदू और मुस्लिम समुदायों को अलग–अलग राष्ट्र माना गया।

इन दोनों संगठनों के बीच वैचारिक मतभेद जैसे राष्ट्रवाद की परिभाषा, शक्ति का बंटवारा, और राजनीतिक रणनीतियां ने न केवल स्वतंत्रता संग्राम की दिशा को प्रभावित किया, बल्कि साम्प्रदायिक तनाव को भी बढ़ावा दिया। ब्रिटिश नीतियों, जैसे ''फूट डालो और राज करो'' ने इन मतभेदों को और गहरा किया। इस पेपर का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि कैसे कांग्रेस और मुस्लिम लीग के टकराव ने भारत के एकीकृत राष्ट्र के सपने को चुनौती दी और अंततः 1947 में विभाजन का मार्ग प्रशस्त किया। यह अध्ययन स्वतंत्रता संग्राम की जटिलताओं और भारतीय समाज की आंतरिक गतिशीलता को समझने में मदद करता है।

मुख्य शब्द :– (key words) समावेशी, राष्ट्रवादी, औपनिवेशिक, धर्मनिरपेक्षता, विचारधारा।

कांग्रेस की विचारधारा : समावेशी राष्ट्रवाद (Congress' ideology: Inclusive nationalism)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, जिसकी स्थापना 1885 में हुई, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रमुख संगठन थी, जिसने समावेशी राष्ट्रवाद की विचारधारा को अपनाकर भारत को एक एकीकृत राष्ट्र के रूप में परिकल्पित किया। इस विचारधारा का मूल आधार था सभी धर्मों, जातियों, क्षेत्रों और समुदायों को एक साझा भारतीय पहचान के तहत एकजुट करना, ताकि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के खिलाफ संयुक्त संघर्ष संभव हो सके। कांग्रेस ने अपने प्रारंभिक वर्षों में संवैधानिक सुधारों की मांग पर ध्यान केंद्रित किया, लेकिन 1920 के दशक में महात्मा गांधी के नेतृत्व में यह एक जन–आंदोलन में परिवर्तित हो गई, जिसने स्वतंत्रता संग्राम को व्यापक और समावेशी बनाया। गांधीवादी दृष्टिकोण ने अहिंसा, सविनय अवज्ञा और स्वदेशी जैसे सिद्धांतों को अपनाकर कांग्रेस को आम जनता से जोड़ा। इस विचारधारा ने न केवल राजनीतिक स्वतंत्रता, बल्कि सामाजिक और आर्थिक स्वराज को भी लक्ष्य बनाया, जिसमें आत्मनिर्भरता और सामाजिक समानता पर जोर दिया गया। कांग्रेस की समावेशी राष्ट्रवादी दृष्टि ने भारत को एक ऐसे राष्ट्र के रूप में देखा, जहां हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई और अन्य समुदाय एक साझा सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत के आधार पर सह–अस्तित्व में रह सकें। इस दृष्टिकोण ने धर्मनिरपेक्षता को अपनी आधारशिला बनाया, जिसका उद्देश्य था किसी भी धार्मिक समुदाय को विशेषाधिकार न देना और सभी को समान अवसर प्रदान करना। कांग्रेस ने जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता और अन्य सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ सुधारवादी रुख अपनाया, जिससे दलितों और अन्य वंचित समूहों को मुख्यधारा में शामिल करने का प्रयास किया गया। स्वदेशी

आंदोलन के माध्यम से कांग्रेस ने आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया, जिसने भारतीय उद्योगों और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने का लक्ष्य रखा।

हालांकि, इस समावेशी दृष्टिकोण के बावजूद, कांग्रेस को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। कुछ मुस्लिम नेताओं को आशंका थी कि हिंदू–प्रधान संगठन होने के कारण कांग्रेस मुस्लिम हितों की अनदेखी कर सकती है। इसके अलावा, कांग्रेस की धर्मनिरपेक्षता को कुछ समूहों ने हिंदू प्रभाव के रूप में देखा, विशेषकर गांधी के ''राम राज्य'' जैसे प्रतीकों के उपयोग के कारण। फिर भी, कांग्रेस ने अपने समावेशी राष्ट्रवाद के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम को एक व्यापक आधार प्रदान किया, जिसने भारत के एकीकृत राष्ट्र के सपने को मजबूती दी। यह विचारधारा स्वतंत्रता संग्राम की जटिलताओं को समझने और भारतीय समाज की विविधता को एकजुट करने के प्रयासों का प्रतीक बनी।

कांग्रेस की विचारधारा में निम्नलिखित प्रमुख तत्व शामिल थे :–

धर्मनिरपेक्षता (Secularism)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की विचारधारा में धर्मनिरपेक्षता एक आधारभूत सिद्धांत था, जिसने भारत को एक एकीकृत और समावेशी राष्ट्र के रूप में परिकल्पित किया। कांग्रेस का मानना था कि भारत की विविध धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना को केवल धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण ही एकजुट कर सकता है। इस सिद्धांत के तहत, कांग्रेस ने हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई और अन्य समुदायों को समान महत्व देकर एक साझा भारतीय पहचान को बढ़ावा दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, कांग्रेस ने धार्मिक आधार पर किसी भी समुदाय को विशेषाधिकार देने से परहेज किया और सभी को राजनीतिक और सामाजिक समानता का आश्वासन दिया। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं ने इस विचार को मजबूती दी, जो मानते थे कि धर्मनिरपेक्षता ही भारत की एकता की कुंजी है।

कांग्रेस की धर्मनिरपेक्षता को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। कुछ मुस्लिम नेताओं को आशंका थी कि हिंदू–प्रधान संगठन होने के कारण कांग्रेस मुस्लिम हितों की अनदेखी कर सकती है। गांधी के ''राम राज्य'' जैसे प्रतीकों का उपयोग भी कुछ समुदायों को हिंदू प्रभाव के रूप में प्रतीत हुआ। फिर भी, कांग्रेस ने अपने संदेशों और कार्यों के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि उसका धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण सभी समुदायों के लिए समान अवसर और सम्मान सुनिश्चित करता है। स्वतंत्रता संग्राम में, कांग्रेस ने विभिन्न धार्मिक समूहों को एक मंच पर लाकर साम्प्रदायिक एकता को बढ़ावा दिया। इस विचारधारा ने न केवल स्वतंत्रता आंदोलन को व्यापक आधार प्रदान किया, बल्कि स्वतंत्र भारत के संविधान में धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को भी मजबूती दी। धर्मनिरपेक्षता कांग्रेस की उस दृष्टि का प्रतीक थी, जो भारत को एक ऐसे राष्ट्र के रूप में देखती थी, जहां विविधता ही उसकी ताकत है।

आर्थिक स्वराज (Economic Swaraj)

कांग्रेस की विचारधारा में आर्थिक स्वराज एक केंद्रीय तत्व था, जो न केवल राजनीतिक स्वतंत्रता, बल्कि आर्थिक आत्मनिर्भरता को भी लक्ष्य बनाता था। महात्मा गांधी ने इस अवधारणा को स्वतंत्रता संग्राम का आधार बनाया, जिसमें भारत को विदेशी आर्थिक निर्भरता से मुक्त करने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने पर जोर दिया गया। आर्थिक स्वराज का अर्थ था स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग, स्थानीय उद्योगों को बढ़ावा देना और आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहन देना। गांधी ने खादी और चरखे को इस विचारधारा का प्रतीक बनाया, जिसने भारतीयों को विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करने और स्वदेशी उत्पादों को अपनाने के लिए प्रेरित किया। स्वदेशी आंदोलन के माध्यम से, कांग्रेस ने ब्रिटिश आर्थिक शोषण के खिलाफ एक प्रभावी हथियार विकसित किया। यह आंदोलन केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जागरूकता का भी साधन था, जिसने भारतीयों में आत्मविश्वास और एकता की भावना को जागृत किया। आर्थिक स्वराज ने ग्रामीण भारत को केंद्र में रखा, जहां गांधी ने गांवों को आत्मनिर्भर इकाइयों के रूप में देखा। इस विचारधारा ने औद्योगीकरण के पश्चिमी मॉडल को चुनौती दी और सादगी, स्थानीय संसाधनों के उपयोग और श्रम आधारित अर्थव्यवस्था को महत्व दिया।

कांग्रेस के इस दृष्टिकोण ने स्वतंत्रता संग्राम को जन–आंदोलन में बदल दिया, क्योंकि यह आम लोगों, विशेषकर किसानों और कारीगरों, को आंदोलन से जोड़ता था। हालांकि, कुछ नेताओं, जैसे जवाहरलाल नेहरू, ने आर्थिक स्वराज के गांधीवादी दृष्टिकोण को सीमित मानते हुए आधुनिक औद्योगीकरण पर जोर दिया। फिर भी, आर्थिक स्वराज ने स्वतंत्रता संग्राम को एक व्यापक आधार प्रदान किया और स्वतंत्र भारत में आर्थिक नीतियों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह विचारधारा भारत की आर्थिक स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता के सपने का प्रतीक थी।

सामाजिक सुधार (Social Reform)

कांग्रेस की विचारधारा में सामाजिक सुधार एक महत्वपूर्ण तत्व था, जिसने स्वतंत्रता संग्राम को केवल राजनीतिक संघर्ष तक सीमित न रखकर सामाजिक परिवर्तन का भी लक्ष्य बनाया। कांग्रेस ने भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों, जैसे जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, लैंगिक असमानता और धार्मिक रूढ़ियों, के खिलाफ सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया। इस विचारधारा का उद्देश्य था एक ऐसे समाज का निर्माण करना, जहां सभी नागरिकों को समान अवसर और सम्मान प्राप्त हो। महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता को ''हिंदू धर्म का अभिशाप'' करार दिया और दलितों को ष्हरिजनष् कहकर उनकी सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने का प्रयास किया। कांग्रेस ने विभिन्न सामाजिक सुधार आंदोलनों, जैसे मंदिर प्रवेश आंदोलन और विधवा पुनर्विवाह को समर्थन देकर समाज में समावेशिता को बढ़ावा दिया। इसने महिलाओं की शिक्षा और उनके राजनीतिक भागीदारी को भी प्रोत्साहित किया, जिसके परिणामस्वरूप सरोजिनी नायडू जैसी महिला नेताओं ने स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कांग्रेस का यह सुधारवादी दृष्टिकोण केवल हिंदू समाज तक सीमित नहीं थाय इसने मुस्लिम और अन्य समुदायों के बीच भी सामाजिक जागरूकता को बढ़ाने का प्रयास किया।

सामाजिक सुधार की यह विचारधारा स्वतंत्रता संग्राम को व्यापक और समावेशी बनाती थी, क्योंकि यह समाज के वंचित वर्गों को आंदोलन से जोड़ती थी। हालांकि, कुछ रूढ़िवादी समूहों ने कांग्रेस के सुधारवादी रुख का विरोध किया, और सामाजिक परिवर्तन की गति धीमी रही। फिर भी, कांग्रेस ने अपने सामाजिक सुधार के एजेंडे के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम को एक सामाजिक क्रांति का रूप दिया। यह विचारधारा स्वतंत्र भारत के संविधान में समानता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों के रूप में प्रतिबिंबित हुई, जो कांग्रेस की समावेशी और प्रगतिशील दृष्टि का प्रमाण है।

मुस्लिम लीग की विचारधारारू अलगाववादी राष्ट्रवाद (Ideology of Muslim League: Separatist Nationalism)

मुस्लिम लीग, जिसकी स्थापना 1906 में हुई, ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में मुस्लिम समुदाय के हितों की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन इसकी विचारधारा धीरे–धीरे अलगाववादी राष्ट्रवाद की ओर उन्मुख हो गई। शुरू में लीग ने ब्रिटिश शासन के तहत मुस्लिम समुदाय के लिए संवैधानिक अधिकारों और प्रतिनिधित्व की मांग की, लेकिन 1930 के दशक में मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में इसने दो–राष्ट्र सिद्धांत को अपनाया, जिसने भारत के विभाजन की नींव रखी। इस विचारधारा ने हिंदू और मुस्लिम समुदायों को दो अलग–अलग राष्ट्रों के रूप में परिभाषित किया, जिनके सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक हित परस्पर असंगत माने गए। मुस्लिम लीग की अलगाववादी राष्ट्रवादी दृष्टि का आधार मुस्लिम समुदाय की विशिष्ट पहचान और उनकी आशंकाएं थीं कि एक हिंदू–प्रधान स्वतंत्र भारत में वे अल्पसंख्यक के रूप में हाशिए पर चले जाएंगे। लीग ने तर्क दिया कि मुसलमानों की धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परंपराएं हिंदुओं से मौलिक रूप से भिन्न हैं, और इसलिए उन्हें अपनी पहचान और हितों की रक्षा के लिए एक अलग राष्ट्र की आवश्यकता है। 1940 के लाहौर प्रस्ताव ने इस विचार को औपचारिक रूप दिया, जिसमें मुसलमानों के लिए एक स्वतंत्र राष्ट्र पाकिस्तान की मांग की गई।

लीग की विचारधारा ने अलग निर्वाचन क्षेत्रों को मजबूत आधार प्रदान किया, जिसे 1909 के मॉर्ले–मिंटो सुधारों के तहत प्राप्त किया गया था। इसने मुस्लिम समुदाय में राजनीतिक जागरूकता को बढ़ावा दिया और उन्हें एक संगठित शक्ति के रूप में उभरने में मदद की। हालांकि, इस दृष्टिकोण ने कांग्रेस की समावेशी राष्ट्रवादी विचारधारा के साथ टकराव को जन्म दिया, जिसने

भारत को एक एकीकृत राष्ट्र के रूप में देखा। लीग की रणनीति अधिक संवैधानिक और राजनीतिक थी, जिसमें ब्रिटिश सरकार के साथ वार्ता और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व पर जोर दिया गया। हालांकि शुरू में लीग ने कांग्रेस के साथ सहयोग किया, जैसे कि 1916 के लखनऊ समझौते में, लेकिन 1937 के प्रांतीय चुनावों के बाद, जब कांग्रेस ने सत्ता साझा करने से इनकार किया, लीग का अलगाववाद और मजबूत हुआ। इसने मुस्लिम समुदाय में यह धारणा पैदा की कि कांग्रेस उनके हितों की अनदेखी कर रही है। परिणामस्वरूप, लीग ने मुस्लिम एकता को संगठित करने और पाकिस्तान की मांग को जन–आंदोलन में बदलने पर ध्यान केंद्रित किया। इस अलगाववादी राष्ट्रवाद ने न केवल स्वतंत्रता संग्राम की दिशा को प्रभावित किया, बल्कि भारत के सामाजिक और राजनीतिक ताने–बाने को भी बदल दिया, जिसका चरम परिणाम 1947 में विभाजन के रूप में सामने आया।

मुस्लिम लीग की विचारधारा में निम्नलिखित बिंदु उल्लेखनीय हैं :–

मुस्लिम पहचान (Muslim identity)

मुस्लिम लीग की विचारधारा में मुस्लिम पहचान का संरक्षण और प्रचार केंद्रीय तत्व था। 1906 में स्थापित, लीग ने भारतीय मुसलमानों की सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक विशिष्टता को रेखांकित किया, जिसे वे हिंदू समुदाय से भिन्न मानते थे। इस विचारधारा ने मुसलमानों को एक अलग सांस्कृतिक और ऐतिहासिक इकाई के रूप में प्रस्तुत किया, जिसके अपने मूल्य, परंपराएं और जीवनशैली थीं। मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में, लीग ने तर्क दिया कि मुसलमान केवल धार्मिक अल्पसंख्यक नहीं, बल्कि एक अलग ''राष्ट्र'' हैं, जिनके हित हिंदुओं के साथ असंगत हैं। इसने मुस्लिम समुदाय में एकता और आत्मविश्वास की भावना को जगाया, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां वे अल्पसंख्यक थे। लीग ने उर्दू भाषा, इस्लामी संस्कृति और मुस्लिम शैक्षिक संस्थानों जैसे अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को बढ़ावा देकर इस पहचान को मजबूत किया। हालांकि, इस जोर ने साम्प्रदायिक विभाजन को गहरा किया, क्योंकि इसने मुस्लिम समुदाय को कांग्रेस के समावेशी राष्ट्रवाद से अलग कर दिया। मुस्लिम पहचान पर आधारित यह विचारधारा दो–राष्ट्र सिद्धांत का आधार बनी, जिसने अंततः पाकिस्तान की मांग को जन्म दिया। इसने स्वतंत्रता संग्राम में मुस्लिम राजनीतिक चेतना को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन भारत की एकीकृत राष्ट्रीय पहचान को कमजोर करने में भी योगदान दिया।

अलग निर्वाचन (Separate election)

मुस्लिम लीग की विचारधारा में अलग निर्वाचन एक महत्वपूर्ण मांग थी, जिसने मुस्लिम राजनीतिक सशक्तिकरण को आधार प्रदान किया। 1909 के मॉर्ले–मिंटो सुधारों के तहत मुसलमानों को अलग निर्वाचन क्षेत्र प्रदान किए गए, जिसे लीग ने मुस्लिम हितों की रक्षा के लिए आवश्यक माना। इस प्रणाली ने मुसलमानों को अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार दिया, जिससे उनकी राजनीतिक आवाज मजबूत हुई। लीग का मानना था कि सामान्य निर्वाचन में, हिंदू बहुसंख्यक होने के कारण मुस्लिम हितों की अनदेखी हो सकती है। अलग निर्वाचन ने मुस्लिम समुदाय को संगठित करने और उनकी विशिष्ट पहचान को राजनीतिक मंच पर स्थापित करने में मदद की। इसने लीग को मुस्लिम मतदाताओं के बीच समर्थन जुटाने का अवसर प्रदान किया, विशेषकर 1937 और 1946 के प्रांतीय चुनावों में। हालांकि, इस मांग ने साम्प्रदायिक विभाजन को गहरा किया, क्योंकि इसने हिंदू और मुस्लिम समुदायों के बीच राजनीतिक एकता की संभावनाओं को कमजोर किया। कांग्रेस ने शुरू में 1916 के लखनऊ समझौते में अलग निर्वाचन को स्वीकार किया, लेकिन बाद में इसका विरोध किया, जिससे दोनों संगठनों के बीच तनाव बढ़ा। अलग निर्वाचन ने लीग की अलगाववादी विचारधारा को मजबूती दी और पाकिस्तान की मांग को औचित्य प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पाकिस्तान की मांग (Demand for Pakistan)

मुस्लिम लीग की विचारधारा का चरम बिंदु 1940 के लाहौर प्रस्ताव में व्यक्त हुआ, जिसमें मुसलमानों के लिए एक स्वतंत्र राष्ट्र पाकिस्तान की मांग की गई। यह मांग दो–राष्ट्र सिद्धांत पर आधारित थी, जिसने तर्क दिया कि हिंदू और मुस्लिम दो अलग–अलग राष्ट्र हैं, जिनके लिए एक साझा राष्ट्र असंभव है। मोहम्मद अली जिन्ना ने इस मांग को मुस्लिम समुदाय के राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक हितों की रक्षा के लिए आवश्यक बताया। पाकिस्तान की अवधारणा ने मुस्लिम समुदाय में व्यापक समर्थन प्राप्त किया,

विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां मुसलमान बहुसंख्यक थे, जैसे पंजाब और बंगाल। 1946 के प्रांतीय चुनावों में लीग की शानदार जीत ने इस मांग की लोकप्रियता को सिद्ध किया। हालांकि, इस विचारधारा ने कांग्रेस के एकीकृत राष्ट्रवाद के साथ गहरा टकराव पैदा किया और साम्प्रदायिक तनाव को बढ़ाया। पाकिस्तान की मांग ने ब्रिटिश नीतियों, जैसे ''फूट डालो और राज करो'' को भी बल दिया, जिसने साम्प्रदायिक विभाजन को गहराने में योगदान दिया। इस मांग ने स्वतंत्रता संग्राम की दिशा को बदल दिया और 1947 में भारत के विभाजन का मार्ग प्रशस्त किया। पाकिस्तान की मांग लीग की अलगाववादी विचारधारा का प्रतीक थी, जिसने मुस्लिम राष्ट्रवाद को एक शक्तिशाली राजनीतिक शक्ति में परिवर्तित कर दिया।

वैचारिक टकराव के प्रमुख बिंदु (Major points of ideological conflict)

कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच वैचारिक टकराव कई मुद्दों पर स्पष्ट था। इनमें से कुछ प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हैं :–

1. राष्ट्रवाद की परिभाषा (Definition of nationalism)

कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच वैचारिक टकराव का मूल आधार राष्ट्रवाद की परिभाषा था। कांग्रेस ने भारत को एक समावेशी राष्ट्र के रूप में देखा, जहां हिंदू, मुस्लिम, सिख और अन्य समुदाय एक साझा सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत के आधार पर एकजुट हो सकते हैं। इस विचारधारा ने धर्मनिरपेक्षता और एकीकृत भारतीय पहचान पर जोर दिया, जिसका लक्ष्य सभी समुदायों को ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक मंच पर लाना था। जवाहरलाल नेहरू और महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने इस दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया, जो भारत को एक एकल राष्ट्र के रूप में परिकल्पित करता था। इसके विपरीत, मुस्लिम लीग ने दो–राष्ट्र सिद्धांत को अपनाया, जिसके अनुसार हिंदू और मुस्लिम दो अलग–अलग राष्ट्र हैं, जिनकी धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान परस्पर असंगत है। मोहम्मद अली जिन्ना ने तर्क दिया कि मुसलमानों को अपनी पहचान और हितों की रक्षा के लिए एक अलग राष्ट्र की आवश्यकता है। यह विचारधारा 1940 के लाहौर प्रस्ताव में स्पष्ट हुई, जिसमें पाकिस्तान की मांग की गई। राष्ट्रवाद की इन परस्पर विरोधी परिभाषाओं ने दोनों संगठनों के बीच गहरे मतभेद पैदा किए, जिसने सहयोग की संभावनाओं को कमजोर किया। कांग्रेस की एकीकृत दृष्टि और लीग की अलगाववादी विचारधारा ने स्वतंत्रता संग्राम की दिशा को प्रभावित किया और अंततः भारत के विभाजन का मार्ग प्रशस्त किया।

2. प्रतिनिधित्व और शक्ति का बंटवारा (Representation and division of power)

प्रतिनिधित्व और शक्ति के बंटवारे को लेकर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच गहरा टकराव था। कांग्रेस ने संसदीय लोकतंत्र के आधार पर बहुसंख्यक शासन की वकालत की, जिसमें सभी समुदायों को समान अधिकार प्राप्त हों। इस दृष्टिकोण में, प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर निर्धारित होना था, जो धर्मनिरपेक्ष और समावेशी सिद्धांतों पर आधारित था। हालांकि, मुस्लिम लीग को आशंका थी कि ऐसी व्यवस्था में मुसलमान, जो अल्पसंख्यक थे, राजनीतिक रूप से हाशिए पर चले जाएंगे। इसलिए, लीग ने अलग निर्वाचन और मुस्लिम हितों की रक्षा के लिए विशेष प्रावधानों की मांग की, जैसा कि 1909 के मॉर्ले–मिंटो सुधारों में प्राप्त हुआ था। लीग ने तर्क दिया कि मुस्लिम समुदाय की विशिष्ट पहचान और हितों को केवल साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के माध्यम से ही सुरक्षित किया जा सकता है। इस मुद्दे पर 1937 के प्रांतीय चुनावों के बाद तनाव और बढ़ गया, जब कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के साथ सत्ता साझा करने से इनकार कर दिया। इस घटना ने लीग को यह विश्वास दिलाया कि कांग्रेस मुस्लिम हितों की अनदेखी कर रही है, जिसने उसकी अलगाववादी मांगों को और मजबूती दी। शक्ति के बंटवारे पर यह असहमति दोनों संगठनों के बीच विश्वास की कमी का प्रमुख कारण बनी और साम्प्रदायिक विभाजन को गहराने में योगदान दिया। यह टकराव अंततः पाकिस्तान की मांग और भारत के विभाजन का आधार बना।

3. गांधीवादी रणनीति बनाम लीग का दृष्टिकोण (Gandhian strategy versus League approach)

कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच वैचारिक टकराव उनकी कार्यशैली और रणनीतियों में भी स्पष्ट था। कांग्रेस ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में अहिंसक सविनय अवज्ञा और असहयोग आंदोलनों को अपनाया, जैसे कि नमक सत्याग्रह और भारत छोड़ो आंदोलन।

गांधीवादी रणनीति ने जन–आंदोलन को प्राथमिकता दी, जिसमें सभी समुदायों को शामिल करने का प्रयास किया गया। हालांकि, इस रणनीति में प्रयुक्त कुछ प्रतीक, जैसे ''राम राज्य'' की अवधारणा, कई मुस्लिम नेताओं को हिंदू प्रभावित प्रतीत हुए, जिससे मुस्लिम समुदाय में असंतोष बढ़ा। गांधी का जोर ग्रामीण भारत और स्वदेशी पर था, जो कांग्रेस को व्यापक जनसमर्थन दिलाने में सफल रहा। इसके विपरीत, मुस्लिम लीग ने अधिक संवैधानिक और राजनीतिक रणनीतियों पर ध्यान केंद्रित किया। मोहम्मद अली जिन्ना ने ब्रिटिश सरकार के साथ वार्ता और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की मांग को प्राथमिकता दी। लीग की रणनीति मुख्य रूप से शहरी और शिक्षित मुस्लिम समुदाय पर केंद्रित थी, जो गांधीवादी जन–आंदोलनों से अलग थी। इस कार्यशैली के अंतर ने दोनों संगठनों के बीच सहयोग को कठिन बना दिया। लीग ने कांग्रेस की रणनीतियों को मुस्लिम हितों के लिए अपर्याप्त माना, जबकि कांग्रेस ने लीग की संवैधानिक रणनीतियों को ब्रिटिश समर्थक माना। इस वैचारिक और रणनीतिक अंतर ने स्वतंत्रता संग्राम में दोनों संगठनों के बीच तनाव को बढ़ाया और एक साझा रणनीति विकसित करने की संभावनाओं को कमजोर किया।

4. संघर्ष और समझौतों का अभाव (Lack of conflict and compromise)

कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच संघर्ष और समझौतों का अभाव उनके वैचारिक टकराव का एक महत्वपूर्ण बिंदु था। दोनों संगठनों ने कई बार सहयोग का प्रयास किया, जैसे कि 1916 के लखनऊ समझौते में, जहां अलग निर्वाचन को स्वीकार किया गया। हालांकि, ये प्रयास अस्थायी और असफल रहे। 1937 के प्रांतीय चुनावों के बाद, जब कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के साथ सत्ता साझा करने से इनकार किया, लीग ने इसे मुस्लिम हितों की उपेक्षा के रूप में देखा। इस घटना ने लीग को और अधिक अलगाववादी बनने के लिए प्रेरित किया। 1940 के दशक में, जैसे कि क्रिप्स मिशन और कैबिनेट मिशन के दौरान, समझौते की संभावनाएं उभरीं, लेकिन दोनों पक्षों के बीच अविश्वास और परस्पर विरोधी मांगों ने इन्हें विफल कर दिया। कांग्रेस एक एकीकृत भारत की वकालत करती रही, जबकि लीग ने पाकिस्तान की मांग पर अडिग रुख अपनाया। नेतृत्व स्तर पर, जवाहरलाल नेहरू और मोहम्मद अली जिन्ना जैसे नेताओं के बीच व्यक्तिगत मतभेदों ने भी संवाद को जटिल बनाया। ब्रिटिश सरकार की फूट डालो और राज करो नीति ने इस अविश्वास को और गहरा किया। समझौतों के अभाव ने साम्प्रदायिक तनाव को बढ़ाया, जिसका परिणाम 1946 में कलकत्ता जैसे दंगों में दिखा। यह असफलता दोनों संगठनों की वैचारिक खाई को उजागर करती है, जिसने न केवल स्वतंत्रता संग्राम को प्रभावित किया, बल्कि भारत के विभाजन को अपरिहार्य बना दिया।

विभाजन की नींव (Foundation of Partition)

कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच वैचारिक टकराव ने भारत के विभाजन की नींव रखी। निम्नलिखित कारकों ने इस प्रक्रिया को तेज किया :–

दो–राष्ट्र सिद्धांत का उदय (Rise of Two-Nation Theory)

मुस्लिम लीग द्वारा प्रतिपादित दो–राष्ट्र सिद्धांत ने भारत के विभाजन की नींव रखने में केंद्रीय भूमिका निभाई। इस सिद्धांत ने तर्क दिया कि हिंदू और मुस्लिम दो अलग–अलग राष्ट्र हैं, जिनकी सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक पहचान परस्पर असंगत है। 1940 के लाहौर प्रस्ताव में, मोहम्मद अली जिन्ना ने इस विचार को औपचारिक रूप दिया, जिसमें मुसलमानों के लिए एक स्वतंत्र राष्ट्र पाकिस्तान की मांग की गई। यह सिद्धांत कांग्रेस की समावेशी राष्ट्रवादी विचारधारा, जो भारत को एक एकीकृत राष्ट्र के रूप में देखती थी, के लिए सीधी चुनौती था। दो–राष्ट्र सिद्धांत ने मुस्लिम समुदाय में व्यापक समर्थन प्राप्त किया, विशेषकर पंजाब और बंगाल जैसे क्षेत्रों में, जहां मुसलमान बहुसंख्यक थे। 1946 के प्रांतीय चुनावों में लीग की शानदार जीत ने इस मांग की लोकप्रियता को सिद्ध किया। इस विचारधारा ने मुस्लिम समुदाय में यह धारणा पैदा की कि एक हिंदू–प्रधान भारत में उनके हित सुरक्षित नहीं रहेंगे। इसने साम्प्रदायिक चेतना को तेज किया और हिंदू–मुस्लिम एकता की संभावनाओं को कमजोर किया। दो–राष्ट्र सिद्धांत ने न केवल स्वतंत्रता संग्राम की दिशा को बदल दिया, बल्कि भारत के राजनीतिक परिदृश्य को भी स्थायी रूप से विभाजित कर दिया। यह सिद्धांत विभाजन का वैचारिक आधार बना, जिसने 1947 में भारत और पाकिस्तान के रूप में दो अलग–अलग राष्ट्रों के निर्माण

को अपरिहार्य बना दिया।

ब्रिटिश नीतियां (British Policies)

ब्रिटिश सरकार की ''फूट डालो और राज करो'' नीति ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच वैचारिक टकराव को गहराने और विभाजन की नींव रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ब्रिटिश शासकों ने साम्प्रदायिक विभाजन को बढ़ावा देकर भारतीय एकता को कमजोर करने का प्रयास किया। 1909 के मॉर्ले–मिंटो सुधारों ने मुसलमानों को अलग निर्वाचन क्षेत्र प्रदान किए, जिसने हिंदू और मुस्लिम समुदायों के बीच राजनीतिक अलगाव को औपचारिक रूप दिया। बाद में, 1935 के भारत सरकार अधिनियम ने भी साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को मजबूत किया। इन नीतियों ने मुस्लिम लीग को अपनी अलगाववादी मांगों के लिए आधार प्रदान किया। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस और लीग के बीच अविश्वास को बढ़ाने के लिए रणनीतिक रूप से दोनों को एक–दूसरे के खिलाफ खड़ा किया। उदाहरण के लिए, 1942 के क्रिप्स मिशन और 1946 के कैबिनेट मिशन में अस्पष्ट प्रस्तावों ने दोनों संगठनों के बीच समझौते की संभावनाओं को कमजोर किया। ब्रिटिश नीतियों ने साम्प्रदायिक तनाव को भड़काने में भी योगदान दिया, क्योंकि उन्होंने साम्प्रदायिक हिंसा को नियंत्रित करने में उदासीनता दिखाई। इन नीतियों ने न केवल हिंदू–मुस्लिम एकता को तोड़ा, बल्कि मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग को वैधता प्रदान की। ब्रिटिश शासन की यह रणनीति भारत के विभाजन को तेज करने में सहायक सिद्ध हुई, क्योंकि इसने सामाजिक और राजनीतिक विभाजन को गहरा कर दोनों समुदायों के बीच सुलह की संभावनाओं को न्यूनतम कर दिया।

साम्प्रदायिक हिंसा (Communal Violence)

1940 के दशक में बढ़ती साम्प्रदायिक हिंसा ने भारत के विभाजन की प्रक्रिया को तेज किया और कांग्रेस–मुस्लिम लीग के टकराव को चरम पर पहुंचाया। 1946 का कलकत्ता दंगा, जिसे ''महान कलकत्ता नरसंहार'' के रूप में जाना जाता है, इस हिंसा का सबसे भयावह उदाहरण था। इस दंगे में हजारों लोग मारे गए, जिसने हिंदू और मुस्लिम समुदायों के बीच गहरा अविश्वास पैदा किया। इसके बाद बिहार, नोआखाली और पंजाब जैसे क्षेत्रों में हिंसा की श्रृंखला ने साम्प्रदायिक तनाव को और बढ़ाया। इन घटनाओं ने मुस्लिम लीग की दो–राष्ट्र सिद्धांत की मांग को बल दिया, क्योंकि मुस्लिम समुदाय में यह धारणा मजबूत हुई कि एक एकीकृत भारत में उनकी सुरक्षा संभव नहीं है। हिंसा ने सामान्य जनता में भय और असुरक्षा की भावना को जन्म दिया, जिसने दोनों समुदायों के बीच सुलह की संभावनाओं को कमजोर किया। कांग्रेस, जो एकीकृत भारत की वकालत कर रही थी, हिंसा को नियंत्रित करने में असहाय दिखी, जबकि लीग ने इसे अपनी अलगाववादी मांगों के औचित्य के रूप में प्रस्तुत किया। ब्रिटिश प्रशासन की उदासीनता ने भी हिंसा को बढ़ावा दिया, क्योंकि उन्होंने प्रभावी हस्तक्षेप नहीं किया। साम्प्रदायिक हिंसा ने भारत के सामाजिक ताने–बाने को तोड़ दिया और विभाजन को अपरिहार्य बना दिया। इसने दोनों समुदायों के बीच स्थायी कटुता पैदा की, जो 1947 के विभाजन के दौरान बड़े पैमाने पर विस्थापन और हिंसा का कारण बनी।

नेतृत्व का अभाव (Lack of Leadership)

कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेतृत्व के बीच विश्वास और संवाद की कमी ने विभाजन की नींव को मजबूत किया। जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी और मोहम्मद अली जिन्ना जैसे नेताओं के बीच व्यक्तिगत और वैचारिक मतभेदों ने समझौते की संभावनाओं को कमजोर किया। कांग्रेस के नेता एक एकीकृत, धर्मनिरपेक्ष भारत के लिए प्रतिबद्ध थे, जबकि जिन्ना ने दो–राष्ट्र सिद्धांत और पाकिस्तान की मांग पर अडिग रुख अपनाया। दोनों पक्षों के बीच संवाद की कमी ने अविश्वास को गहरा किया। उदाहरण के लिए, 1937 में कांग्रेस द्वारा सत्ता साझा करने से इनकार ने लीग को यह विश्वास दिलाया कि कांग्रेस मुस्लिम हितों की उपेक्षा कर रही है। 1946 के कैबिनेट मिशन जैसे अवसरों पर, जहां एक संघीय ढांचे का प्रस्ताव था, नेतृत्व के बीच असहमति के कारण समझौता विफल रहा। नेहरू के बयानों, जैसे कि संविधान सभा की सर्वोच्चता पर जोर, ने जिन्ना को यह आशंका दी कि मुस्लिम हित सुरक्षित नहीं रहेंगे। गांधी के प्रयास, जैसे कि जिन्ना के साथ वार्ता, भी असफल रहे, क्योंकि लीग ने अपनी मांगों पर कोई समझौता नहीं किया। ब्रिटिश

सरकार ने भी नेतृत्व के बीच इस विभाजन का लाभ उठाया, जिसने सुलह की संभावनाओं को और कमजोर किया। नेतृत्व का यह अभाव स्वतंत्रता संग्राम के अंतिम चरण में स्पष्ट था, जिसने साम्प्रदायिक तनाव को अनियंत्रित होने दिया और विभाजन को अपरिहार्य बना दिया।

निष्कर्ष (Conclusion)

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन उनकी वैचारिक दृष्टियों में गहरे मतभेद थे, जिन्होंने न केवल आंदोलन की दिशा को प्रभावित किया, बल्कि भारत के विभाजन की नींव भी रखी। कांग्रेस ने समावेशी राष्ट्रवाद को अपनाया, जो धर्मनिरपेक्षता, आर्थिक स्वराज और सामाजिक सुधारों पर आधारित था, और भारत को एक एकीकृत राष्ट्र के रूप में देखा। इसके विपरीत, मुस्लिम लीग ने अलगाववादी राष्ट्रवाद का मार्ग चुना, जिसमें दो–राष्ट्र सिद्धांत के तहत मुस्लिम पहचान, अलग निर्वाचन और पाकिस्तान की मांग को प्राथमिकता दी गई। इन परस्पर विरोधी विचारधाराओं ने राष्ट्रवाद की परिभाषा, शक्ति के बंटवारे, रणनीतियों और समझौतों जैसे मुद्दों पर तीखा टकराव पैदा किया। कांग्रेस की गांधीवादी रणनीति और लीग की संवैधानिक दृष्टिकोण ने सहयोग को कठिन बना दिया, जबकि ब्रिटिश नीतियों और साम्प्रदायिक हिंसा ने सामाजिक ताने–बाने को और कमजोर किया। नेतृत्व के बीच विश्वास की कमी ने समझौतों की संभावनाओं को न्यूनतम कर दिया, जिसने 1947 में भारत और पाकिस्तान के रूप में दो राष्ट्रों के निर्माण को अपरिहार्य बना दिया। यह वैचारिक टकराव स्वतंत्रता संग्राम की जटिलताओं को उजागर करता है, जो केवल ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष नहीं था, बल्कि भारतीय समाज की आंतरिक वैचारिक और सामुदायिक गतिशीलता का भी प्रतिबिंब था। यह अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे वैचारिक मतभेद और साम्प्रदायिक तनाव एक राष्ट्र के भविष्य को आकार दे सकते हैं। स्वतंत्रता संग्राम की यह कहानी भारत के इतिहास में एकता और विभाजन की दोहरी विरासत को रेखांकित करती है, जो आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ सूची :– (Reference List)

1. बिपिन चंद्रा, 2009, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली।
2. सुमित सरकार, 1983, आधुनिक भारतरू 1885–1947, मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली।
3. रामचंद्र गुहा, 2017, भारत गांधी के बाद, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली।
4. से ख र बंधोपाध्याय, 2004, फ्रॉम प्लासी टू पार्टिशन, ओरिएंट लॉन्गमैन, नई दिल्ली।
5. अनिल सील, 1968, द इमर्जेंस ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
6. आलोक भल्ला, 2006, पार्टिशन डायलॉग्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
7. मुशीरुल हसन, 1997, लिगेसी ऑफ ए डिवाइडेड नेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
8. रजनी कोठारी, 1989, पॉलिटिक्स इन इंडिया, ओरिएंट लॉन्गमैन, नई दिल्ली।
9. सुनील खलनानी, 1997, द आइडिया ऑफ इंडिया, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली।
10. पार्थ चटर्जी, 1993, नेशनलिस्ट थॉट एंड द कोलोनियल वर्ल्ड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
11. सुरेंद्रनाथ सेन, 1957, अठारह सौ सत्तावन, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
12. तारा चंद, 1961, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
13. आशीष नंदी, 2005, द इंटीमेट एनिमी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
14. जसवंत सिंह, 2009, जिन्नारू इंडिया, पार्टिशन, इंडिपेंडेंस, रूपा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
15. मधु लिमये, 1985, भारत की राजनीति, किताब महल, नई दिल्ली।
16. अरुण शौरी, 1997, रिलीजन इन पॉलिटिक्स, रूपा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
17. राजेंद्र प्रसाद, 1946, इंडिया डिवाइडेड, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली।
18. दीपांकर गुप्ता, 2000, इंटरोगेटिंग कास्ट, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली।
19. गैल ओमवेट, 1994, दलित्स एंड द डेमोक्रेटिक रिवॉल्यूशन, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
20. एकनाथ रानाडे, 1971, स्वामी विवेकानंद और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, विवेकानंद केंद्र, नई दिल्ली।